REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2018

सुभाषचंद्र बोस का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश

लिंकन कुमार
शोध छात्र, इतिहास विभाग,
एन.ए.एस.(पी. जी.) कॉलेज, मेरठ.

मई 1921 में भारतीय नागरिक सेवा से त्यागपत्र देने का सुभाष का निर्णय संपूर्ण देश में एक कौतूहल का विषय बन चुका था। उनके अनेक शुभचिंतकों ने, जिनमें अंग्रेज भी थे, उन्हें समझाने की पूरी कोशिश की। उनके पिता के मित्र और उड़ीसा के पूर्व आयुक्त सर विलियम ड्यूक, जो उस समय सेक्रेट्री फॉर स्टेट विभाग में अंडर सेक्रेटरी के पद पर थे, सुभाष की योग्यता से पूर्णतया परिचित होने के कारण सुभाष चंद्र बोस के ब्रिटिश राज के लिये किये जाने वाले संभावित योगदान के प्रति आशावान थे।[1] वे भविष्य में ब्रिटिश राज के लिए सुभाष चंद्र बोस की एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में उपयोगिता से परिचित थे। ड्यूक ने उन्हें त्यागपत्र देने से रोकने के कई कारण बताए। सुभाष ने विनयपूर्वक अपनी बात रखते हुए स्पष्ट किया कि उनका लक्ष्य देश सेवा है परंतु सरकारी पद पर रहकर वे सत्ता की आज्ञा पालन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर पाएंगे और उस समय की ब्रिटिश सरकारी नीति किसी भी प्रकार से देश सेवा के प्रति अनुकूल नहीं थी।[2] सरकारी पद पर नियुक्त होकर सुभाष देशवासियों पर शासन करने वाले अन्याय का कारण नहीं बनना चाहते थे। सुभाष ने सर विलियम ड्यूक को प्रत्युत्तर में कहा कि यद्यपि उद्देश्य पूर्ण हो चुका है परंतु मेरी मंजिल यह नहीं है। मेरा लक्ष्य राष्ट्र की स्वतंत्रता तथा भारतीय गौरव की पुनः स्थापना है। सरकारी पद पर नियुक्त होकर मुझे अपने देशवासियों पर शासन करने वाला अन्यायी नहीं बनना है। मैं अपने निर्णय पर अडिग हूँ। सर विलियम ने अंतिम प्रयास के रूप में सुभाष को यह संदेश दिया कि यदि तुम सरकारी नौकरी नहीं करना चाहते तो मत करो, किंतु भारत लौटने तक आईसीएस से त्यागपत्र देने से रुक जाओ। पिता से विचार–विमर्श करके ठंडे दिमाग से सोचना कि तुम्हें क्या करना है। परंतु उनका यह प्रयास भी विफल हो गया। सुभाष अपने निश्चय का परित्याग नहीं कर सकते थे, अत्याचारी सरकार का हिस्सा बनना उस स्वाभिमानी पुण्यात्मा को गवारा नहीं था। सुभाष ऐसे राष्ट्रवादी के रूप में परिवर्तित हो चुके थे जिसने सरकारी गुलाम बनने से इनकार कर दिया था। स्पष्ट था कि सुभाषचंद्र बोस अपने आदर्शों और देशभक्ति के साथ किसी कीमत पर समझौता नहीं करना चाहते थे। उनके लिए सबसे बढ़कर देश था और उसके लिए वे अपने सभी ऐशो आराम का त्याग करने को उद्यत थे। अंततः सुभाष चंद्र बोस का परीक्षा उत्तीर्ण करने से लेकर त्यागपत्र देने तक का सफर पूर्ण हुआ। अब उनके लिए लंदन में ठहरना व्यर्थ था, अतः सामान समेटकर के सुभाषचंद्र बोस स्वदेश की ओर रवाना हो गए। लंदन से चला जहाज 16 जुलाई 1921 को भारत पहुँचा और सुभाष ने पुनः मातृभूमि की रज को अपने माथे पर लगाया।

जिस समय सुभाष चंद्र बोस भारत लौटे, भारत में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन अपने चरम पर था। देशभर में गांधीजी के नाम की जय जयकार हो रही थी। उनके संघर्षों, शक्ति और आदर्शों ने भारतीय जनमानस को अत्यंत प्रभावित किया था। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों को झुका कर जो चमत्कार किया था, लोग उनसे भारत में भी उसी प्रकार के चमत्कार की आशा कर रहे थे। गांधीजी के जादुई प्रभाव ने सुभाष को भी जकड़ लिया था। वह घंटों एकांत में बैठकर उनके सिद्धांतों का अन्वेषण किया करते थे। सुभाष ने गांधी जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए एक बार कहा था कि वर्ष 1920 तक भारत में सामाजिक हित में कानून व्यवस्था निष्क्रिय हो चुकी थी। सशस्त्र क्रांति अपने चरम की ओर थी। शांतिपूर्ण नीतियों द्वारा सहमति असंभव प्रतीत हो रही थी। नेतृत्व विहीन भारत देश को एक कुशल और सशक्त नेता की आवश्यकता थी, जो नवीन तरीके से राष्ट्रीय आंदोलन को संभाल सके। ऐसी परिस्थितियों में दृढ़ संकल्प शक्ति के रूप में एक महान

नेता का उदय हुआ और वे थे महात्मा गांधी। वे जानते थे कि आने वाले समय में स्वतंत्रता के संघर्ष का भार उनके कंधों पर होगा, उन्हें ही नए युग का नेतृत्व करना है इसलिए वे शांति साधना में लीन होकर शक्ति संचय में लगे हुए थे। उनकी नम्रता दिखावे की नहीं थी, न ही संघर्ष शक्ति का उनमें अभाव था। वस्तुतः उनके स्वर में दृढ़ता थी और लोग उनके नेतृत्व के पीछे एकजुट खड़े थे।

दक्षिण अफ्रीका के अपने कार्यों की प्रसिद्धि को साथ लेकर 1915 में वह वापस भारत लौटे और अगले 5 वर्षों में गांधीजी के व्यक्तित्व का प्रसार ऐसा हुआ कि 1920 ईस्वी में संपूर्ण कांग्रेस उनके निर्णयों के पीछे बिना किसी वाद विवाद के खड़ी होने को तत्पर दिख रही थी।[3] खेड़ा, अहमदाबाद और चंपारण के उनके सत्याग्रही प्रयासों ने उन्हें मान्यता भी प्रदान कर दी थी परंतु क्या केवल शांतिपूर्ण प्रदर्शनों से देश को स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है, इस संबंध में उनके विचारों से कई लोग पूर्णतया सहमत नहीं दिखते थे। रोलैट एक्ट, जलियांवाला नरसंहार और हंटर कमेटी की एकतरफा रिपोर्ट ने स्वयं गांधी जी को भी इस रणनीति पर विचार करने के लिए विवश किया।[4] यद्यपि गांधीजी आरंभ से ही हिंसा व उग्रपंथ के विचार के समर्थक नहीं थे तथापि वे सत्याग्रही विरोध को नरम प्रदर्शन या कमजोर प्रतिरोध के रूप में देखे जाने की क्रिया के भी विरोधी थे। इसलिए सितंबर 1920 में उन्होंने कांग्रेस अधिवेशन के मंच से एक अखिल भारतीय असहयोग आंदोलन आरंभ करने का कार्यक्रम प्रस्तुत किया।[5] असहयोग और बहिष्कार के माध्यम से स्वतंत्रता संघर्ष को देश के कोने कोने तक पहुंचाने का कांग्रेस और महात्मा गांधी का कार्यक्रम अत्यंत महत्वाकांक्षी था।

जब सुभाष चंद्र बोस त्यागपत्र देकर भारत लौटे तो असहयोग आंदोलन अपने चरम पर था। भारतीय जनमानस और राजनीतिक क्षेत्र गांधी जी से दक्षिण अफ्रीका के उनके किए गए चमत्कारों को दोहराने की उम्मीद कर रहा था। अखबारों और अन्य व्यक्तियों से हुई वार्ता के आधार पर स्वयं सुभाष को महात्मा गांधी का व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक लगा था और यही कारण था कि भारत वापसी के तत्काल बाद ही सुभाष चंद्र बोस महात्मा गांधी से मिलने को उत्सुक होकर उनके निवास पर पहुंच गए।

यदि भारतवंशी एक साथ स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील हो जाएं तो स्वतंत्रता मात्र एक वर्ष में प्राप्त की जा सकती है – महात्मा गांधी के इस विचार से सुभाष चंद्र बोस लगभग उद्वेलित हो चुके थे। गांधी जी से सुभाष की प्रथम भेंट मुंबई के मणिभवन में हुई थी। मणि भवन उस समय असहयोग आंदोलन के संचालन का मुख्य केंद्र था। 16 जुलाई 1921 की भरी दोपहर में जब सुभाष की प्रथम भेंट महात्मा गांधी से हुई तो वह अभिभूत थे।[6] महात्मा गांधी के द्वारा उनका नाम लेकर किया गया हार्दिक स्वागत सुभाष के लिए आश्चर्यजनक था। महात्मा ने राष्ट्रहित में आईसीएस सेवा से दिए गए उनके त्यागपत्र को महान त्याग और साहस भरा कदम बताया। सुभाष गांधीजी से अपने व्यथित मन की दशा में प्रश्न पूछने के लिए व्यग्र थे। सुभाष चंद्र बोस ने मुख्यतः तीन प्रकार के प्रश्न महात्मा गांधी के सम्मुख रखे।[7] प्रथम यह कि असहयोग आंदोलन के विविध कार्यक्रम किस प्रकार से कर बंदी की अवस्था तक पहुंचेंगे? द्वितीय करबंदी आंदोलन किस प्रकार से भारत से अंग्रेजों को बाहर निकालने में सक्षम हो सकेगा? सबसे ज्यादा कौतूहल तीसरे प्रश्न को लेकर था कि आखिर किस आधार पर गांधीजी यह दावा कर रहे हैं कि यदि उचित व पूर्ण रुप से सहयोग व बहिष्कार का परिपालन कर लिया जाए तो मात्र एक वर्ष के भीतर ही स्वराज की प्राप्ति की जा सकती है?

बोस को महात्मा गांधी से केवल प्रथम प्रश्न का ही संतोषजनक उत्तर प्राप्त हो सका था। गांधी जी ने असहयोग की रूपरेखा समझाते हुए स्पष्ट किया था कि उनका लक्ष्य सरकार को शांतिपूर्ण आंदोलन के द्वारा पंगु करना था। इसके अनुसार प्रत्येक क्षेत्र में असहयोग के द्वारा सरकार की वैधानिकता पर ही प्रश्न खड़ा कर दिया जाए। किसी दमनकारी स्थिति में करबंदी का आंदोलन आरंभ किया जाएगा जिससे सरकार की रीढ़ की हड्डी पर प्रहार किया जा सके। बड़े उद्योगों के स्थान पर कुटीर उद्योगों को प्रश्रय दिया जा सकेगा। सरकार के आर्थिक स्रोत बंद होने की दशा में सरकार को आसानी से झुकाया जा सकेगा। सुभाष बड़े एकाग्रचित्त होकर गांधीजी के वाक्यों को सुन रहे थे। कुछ बातें उन्हें तर्कसंगत लगी परंतु कई बातें स्पष्ट नहीं हो पा रही थीं। सुभाष ने उस मुलाकात का जिक्र करते हुए आगे कहा था कि वह समझ नहीं पा रहे थे कि महात्मा गांधी क्या कहना चाह रहे हैं? कई बातें अस्पष्ट थी, या तो गांधीजी को उस बारे में पता नहीं था अथवा वह अधिक बताना नहीं चाह रहे थे। अंत में सुभाष ने यही स्वीकार किया कि संभवत वो स्वयं महात्मा गाँधी की बात को स्वीकार नहीं कर पाए थे क्योंकि सुभाष की अपनी सोच ही उस समय तक इतनी विकसित नहीं हुई थी।[8] सुभाष के लिए स्पष्ट हो गया था कि यद्यपि उनका और गांधीजी का लक्ष्य व उद्देश्य एक ही था तथापि सुभाष चंद्र का

मार्ग गांधीजी के पवित्र साधनों वाले मार्ग से भिन्न था। गांधीजी जहां विरोधी के हृदय परिवर्तन को लक्ष्य करके कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे, वहीं सुभाष का मानना था कि बिना किसी निर्णायक भय के इस प्रकार के हृदय परिवर्तन की आशा अंग्रेजों से करने का कोई आधार उपलब्ध नहीं है।

सुभाष की मनोदशा को अनुभवी गांधीजी ने समझ लिया था और सुभाष की प्रतिभा के समुचित प्रयोग के लिए चिंतित भी हुए क्योंकि उन्हें सुभाष के विचार विध्वंसक लग रहे थे। अतः गांधी जी ने युवा सुभाष चंद्र को एक योग्य गुरु के पास भेजना उचित समझा जो उनकी शक्ति व ऊर्जा को सही दिशा में प्रयोग करें।[9] सुभाष ने उनके सुझाव पर कोलकाता जाकर देशबंधु चितरंजन दास से मुलाकात की। बोस चितरंजन बाबू को छात्र जीवन से जानते थे और कॉलेज के निष्कासन के प्रसंग में उन्होंने दास बाबू से विधिक सहायता भी प्राप्त की थी। इस समय तक दास बाबू कोलकाता के राजनीतिक वर्ग में सर्वाधिक सशक्त व कुशल नेतृत्व कर्ता के रूप में स्थापित हो चुके थे। लगभग रु0 एक लाख मासिक की आय वाली भरी पूरी वकालत को दास बापू ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के लिए सहर्ष त्याग दिया था और उनका यह त्याग किसी भी रूप में सुभाष के सरकारी सेवा से हटने के कदम से कमतर नहीं था।[10] दास बाबू सुभाष की प्रतिभा से अवगत थे और महात्मा गांधी के विचारों को भी गहराई से समझते थे। सुभाष के मन में व्याप्त संशय को दूर करने के लिए उन्होंने बड़ी स्पष्टता से उन्हें समझाया। उनके अनुसार गांधी जी देश में एकता न्याय और नैतिकता की स्थापना करना चाहते हैं, सत्य और अहिंसा उनका सिद्धांत है और वे उसी का पालन कर रहे हैं। शांतिपूर्ण तरीके से सरकार को विचलित कर देना उनकी विशेषता है।[11] यही कारण है कि उन्हें अपार जन समर्थन मिलता है। परंतु यह निश्चय ही खेदजनक है कि इस संघर्ष प्रक्रिया में उनकी नीतियां स्पष्ट ही रह जाती हैं। पूरी तरह से उनका प्रयोग न किए जाने के कारण अंग्रेजों को दमन का अवसर प्राप्त हो ही जाता है। दास बाबू का यह मानना था कि भारतीय त्याग और बलिदान में पीछे नहीं हैं परंतु संघर्ष का तरीका सही से मालूम ना होने के कारण संघर्ष लंबा होता जा रहा है। सुभाष चंद्र बोस उनके द्वारा कहे गए विचारों से पूर्णतया सहमत होने का प्रयत्न कर रहे थे। वह गांधी जी की लोकप्रियता से भी भलीभांति परिचित थे और उनके महत्व को स्वीकारते भी उनका मानना था कि पृथक मार्गों का अवलंबन करके भी भारतीय स्वतंत्रता को प्राप्त किया जा सकता है।[12] चितरंजन दास सुभाष बाबू के इस समन्वयवादी नजरिये से अत्यंत प्रभावित हुए। वस्तुतः इस समय तक सुभाषचंद्र बोस को दास बाबू के रूप में राजनीतिक गुरु मिल गया था, जबकि देशबंधु को भी सुभाषचंद्र बोस के रूप में एक योग्य और कमर्ठ शिष्य प्राप्त हो चुका था। दास बाबू से अपनी इस भेंट के बारे में सुभाष चंद्र बोस ने लिखा था कि बातचीत के दौरान ही मुझे यह भली प्रकार ज्ञात हो चुका था कि भविष्य की योजना के संदर्भ में दास बाबू का दृष्टिकोण एकदम स्पष्ट है।[13] उनका लक्ष्य और उसे पाने की योजना पूरी तरह से पारदर्शी और स्पष्ट थी। वह ऐसे महापुरुष थे जो केवल उद्देश्य प्राप्ति हेतु सर्वस्व न्योछावर करने के लिए ही तैयार नहीं थे बल्कि दूसरों से भी त्याग की मांग कर सकते थे। उनकी दृष्टि में युवा होना या रक्त उबाल का होना सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचायक था।[14] उनसे मिलकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई क्योंकि मुझे मेरा मार्गदर्शक मिल गया था। अंततः नवंबर 1921 में सुभाषचंद्र बोस ने कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण कर ली।[15]

संदर्भ सूची

1. बोस, अशोक नाथ, माई अंकल नेताजी, काली प्रेस, कलकत्ता, 1977, पेज 143
2. सोपान, नेताजी सुभाष चंद्र बोस : हिज लाईफ एंड वर्क, संस्कार साहित्य मंदिर, भावनगर, काठियावाड, 1946, पेज 88
3. वही, पेज 89
4. कुमार, डॉ. प्रभाष (संपा0),सुभाष चंद्र बोस के दस्तावेज, खण्ड 01, भव्या पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2013, पेज 154
5. बोस, अशोक नाथ, वही, पेज 146
6. मुखर्जी,गिरिजा के., सुभाष चंद्र बोस, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1975, पेज 94
7. कुमार, डॉ. प्रभाष (संपा0), वही, पेज 161

8. गोपाल, मोहन, लाइफ एंड टाइम्स ऑफ सुभाष चंद्र बोस ऐज टोल्ड इन हिज वर्क, विकास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1978, पेज 64
9. वही, पेज 67
10. बोस, सुभाष चंद्र, ऐन इंडियन पिलग्रिम, थिकर एंड कम्पनी, कलकत्ता, 1948, पेज 104
11. वही, पेज 105
12. हायासिड, तात्सुओ, नेताजी सुभाष चंद्र बोस : हिज ग्रेट स्ट्रगल ऐंड मार्टीडम (अनुवादः विश्वनाथ चटर्जी), एलाइड पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1970, पेज 76
13. पांचाले, रणजीत, बोस की नजर में देशबंधु, अमर उजाला, कानपुर संस्करण, 23 जनवरी 2010
14. पांचाले, रणजीत, वही,
15. अरुण, पी., टेस्टामेंट ऑफ सुभाष बोस, राजकमल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1946, पेज 78